Bundelkhand Journal of Academic Research

विकास के सिद्धांत का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. आलोक गुप्ता
असोसिएट प्रोफेसर (समाजशास्त्र), राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर, उत्तर प्रदेश।
(**Corresponding Author:** alokgupta.alokgupta@gmail.com)
https://doi.org/10.5281/zenodo.23005666

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र विकास की अवधारणा से संबंधित महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन है, जो कि द्वितीयक सामग्री पर आधारित है। विकास मानव–जीवन की अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। आदिकाल से वर्तमान आधुनिक युग तक विकास की प्रक्रिया को अपनाने का ही परिणाम है कि मानव सभ्यता आज वर्तमान रूप में परिलक्षित होती है। विकास एक बहुआयामी एवं गतिशील प्रक्रिया है, जिसमें आर्थिक वृद्धि के साथ–साथ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, तकनीकी तथा मानवीय कल्याण में सकारात्मक परिवर्तन शामिल होते हैं। प्रारम्भिक विकास सिद्धांतों में मुख्यतः आर्थिक वृद्धि, पूँजी निर्माण और औद्योगीकरण को विकास का आधार माना गया, जबकि आधुनिक दृष्टिकोण में मानव विकास, समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और सतत विकास को भी समान महत्त्व दिया जाता है। विभिन्न विकास सिद्धांतों का अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि विभिन्न देशों और समाजों में विकास की प्रक्रिया किस प्रकार आगे बढ़ती है। विकास के विविध आयामो की समझ के लिये विकास के सिद्धान्तों का गहन विश्लेषण आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र उक्त विश्लेषण का समाज–वैज्ञानिक प्रयास है।

आलेख सूचना

प्राप्त: 23 अगस्त, 2026 **स्वीकृत:** 02 सितंबर, 2026 **प्रकाशित:** 30 सितंबर, 2026

सारणी: 01 **चित्र एवं ग्राफ:** 00 **स्रोत एवं संदर्भ:** 10

मुख्य शब्द: औद्योगीकरण, सामाजिक न्याय, सतत विकास, कल्याण, यथार्थवाद, प्रगति।

1. परिचय एवं पृष्ठभूमि : विकास की परिभाषा बहुआयामी है। इसकी स्पष्ट और सर्वमान्य परिभाषा करना आसान नहीं है। इसकी बहु आयामी प्रकृति के कारण ही इसकी सर्व समावेशी परिभाषा प्राप्त होने में अनेक कठिनाइयां हैं। इसके बावजूद भी विकास की अवधारण के अन्तर्गत कुछ ऐसे पहलू हैं जिनके द्वार इसे समझा जा सकता है। सामान्य अर्थों में, विकास का अर्थ है जीवन में बेहतर परिस्थितियों की वृद्धि होना। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से समझें तो स्पष्ट होता है कि विकास की अवधारणा बहुत पुरानी नही है। यह विगत शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बाद के वर्षों में प्रचलन में आई। यह वह समय था जब आज के अधिकांश अविकसित देश अपने लम्बे औपनिवेशिक दासता से मुक्त होकर स्वतंत्र देश के रूप में विश्व पटल पर प्रकट हो रहे थे। इन देशों ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं में नियोजित विकास की नीति अपनाई थी।

एडम स्मिथ की 'वैल्थ आफ नेशन्स' को विकास के अर्थशास्त्र का पहला ग्रंथ माना जाता है, लेकिन विकास के अर्थशास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन 20वीं सदी के मध्य में प्रारंभ हुआ। वस्तुतः विकास एक सापेक्षिक धारणा है, जो कि अपने आरम्भिक स्तर पर एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के अविकसित विकास की अवधारण को समझने के लिए अनेक विद्वानों ने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। कुछ सिद्धांतकारों ने विकास को केवल आर्थिक आधार पर व्यवस्थित किया, तो कुछ ने आर्थिक पहलु के साथ–साथ अन्य पहलु जैसे सामाजिक जीवन, स्वास्थ्य, जीवन प्रत्याशा आदि को भी विकास की अवधारण मे सम्मिलित किया।

1950 से 1960 के दशक में विद्वानों ने आर्थिक समृद्धि को विकास हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वीकर किया। विकास का यह मॉडल विशुद्ध रूप से आर्थिक दृष्टिकोण पर आधारित है। इस सिद्धांत के अनुसार आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो विभिन्न स्तरों से होकर गुजरती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, विकासशील देशों में विकास की अवधारण बचत, निवेश एवं विदेशी सहायता में वृद्धि से सम्बंधित है और विकास की दर इन देशों में बचत और निवेश की दर से निर्भर करती है।

1960 के बाद विकास की अवधारण को एक नए परिप्रेक्ष्य से देखा जाने लगा। जहां पुराने परिप्रेक्ष्य में अर्थव्यवस्था के उत्पादन पक्ष को केंद्र में रखा गया था, वही इस नए परिप्रेक्ष्य में वितरण पक्ष महात्वपूर्ण हो गया जो

कि विकास की व्यवस्था घरेलु और अंतरराष्ट्रीय शक्ति संबंधों की संरचना के आधार पर करता है। विकास संबंधी यह नवीन परिप्रेक्ष्य यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि किस तरह से विकास की वर्तमान प्रकृति विभिन्न देशों के बीच प्रभुता एवं अधीनता के संबंधों का विकास करती है। यह एक लोक–उन्मुख परिप्रेक्ष्य है, जिससे विकास संबंधी संरचनात्मक एवं संस्थात्मक बाधाओं को चिन्हित करने पर अधिक बल दिया जाता है।

प्रत्यक्षवादी विकास के सिद्धांत के अनुसार विकास मात्र भौतिक उपलब्धियों में वृद्धि और भौतिक जीवन स्तर में सुधार नहीं है बल्कि यह समाज में ऐसी सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से भी संबंधित है जो भौतिक प्रगति में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वस्तुतः यह उपागम एक प्रकार्यवादी उपागम है जो विकास की दर को बढ़ाने वाले नियमों और प्रक्रियाओं पर विशेष बल देता है। इस उपागम से प्रमुखत रूप से दो समाजशास्त्री संबंधित हैं। आगस्त कॉमटे और टॉलकट पारसंस। उपरोक्त दोनों समाजशास्त्रियों द्वारा विकास के प्रत्यक्षवादी सिद्धांत का व्यापक विवरण प्रस्तुत किया है।

20वीं सदी के उत्तरार्ध में विकास का एक अन्य सिद्धांत 'यथार्थवादी विकास का सिद्धांत' प्रस्तावित किया गया। पूर्व में जो उपागम थे वे वस्तुओं के उत्पादन की वृद्धि को विकास का पर्याय मानते थे, जबकि यह उपागम अर्थव्यवस्था के वितरण पक्ष पर केंद्रित था। अब विकास की परिभाषा यथार्थवादी अर्थों में की जाने लगी। यह उपागम कल्याण उन्मुख और समाजवादी है जिसमें आर्थिक पक्ष के साथ–साथ सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक पक्ष समाहित होते हैं।

अल्प विकास का सिद्धांत मुख्य रूप से निर्भरता का सिद्धांत है। यह सिद्धांत मुख्य रूप से आंद्रे गुंटर फ्रैंक, समीर अमीन और इमैनुअल वालरस्टीन जैसे विद्वानों से संबंधित है। इसका प्रतिपादन 1973 में पॉलबरान ने अपनी पुस्तक ''द पॉलीटिकल इकोनामी आफ ग्रोथ'' में किया। यह सिद्धांत कम विकसित देशों के अल्प विकास को विकसित धनी देशों द्वारा उन पर प्रभुत्व और साम्राज्यवादी दावों के इस्तेमाल के परिणाम के रूपमें देखता है।

विकास का विश्व–व्यवस्था सिद्धात एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धांत से जुड़े हुए महत्वपूर्ण सिद्धातकार है– आंद्रे गुंटर फ्रैंक, इमैनुअल वॉलर स्टीन, समीर अमीन आदि। इसे सर्वप्रथम आंद्रे गुंटर फ्रैंक ने प्रतिपादित किया। इस सिद्धांत के समर्थक प्रमुख रूप से जो विशेषताएं इसमें मानते हैं, वह है कि विश्वव्यवस्था दो परस्पर विरोधाभासी प्रकार के समाजों से बनी हुई है–अमीर देश के समाज और गरीब देश के समाज। इन दोनों के बीच एक अन्य श्रेणी भी पाई जाती है। इन दोनों श्रेणियां के बीच असमान विनिमय सर्वप्रमुख धारणा है। इसमें आंतरिक, सामाजिक, आर्थिक संरचनाओं की मौजूदगी को महत्व न देकर असमानताओं की अंतरराष्ट्रीय संरचना पर अधिक बल दिया जाता है। फ्रैंक के अनुसार वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में महानगरीय देश पिछड़े देशों के आर्थिक अधिशेषकाहरण करके विकसित होते हैं। वही वालरस्टीन का मानना है कि वर्तमान विश्वव्यवस्था पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित है। इस व्यवस्था में केंद्र के क्षेत्र अर्थात यूरोप के उत्तर पश्चिम क्षेत्र को सर्वाधिक फायदा हुआ जबकि परिधि के क्षेत्र अर्थात पूर्वी यूरोप के देश तथा दक्षिणी अमेरिका के देशों को सर्वाधिक नुकसान हुआ।

असमान विनिमय का सिद्धांत जिसके प्रतिपादन में सबसे महत्वपूर्ण योगदान इम्युनल का है, वह असमान विनिमय के लिए उत्तरदायी कारणों पर इस सिद्धांत में अधिक ध्यान देते हैं। इस सिद्धांत का मूल तत्व है कि धनी और निर्धन देशों के बीच श्रम की गतिशीलता उतनी नहीं है जितनी कि पूंजी की गतिशीलता है। इसका परिणाम होता है कि अल्पविकसित देशों में मजदूरी की निम्न दर का होना। मजदूरी की निम्न दर के कारण अल्प विकसित देशों के उत्पाद विकसित देशों की तुलना में सस्ते होते हैं।

2. विकास का सैद्धांतिक विश्लेषण :

2.1. विकास का शास्त्रीय सिद्धांतः एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो तथा थॉमस माल्थस जैसे अर्थशास्त्रियों के विचारों में श्रम विभाजन, पूँजी संचय, उत्पादन और जनसंख्या को विकास की प्रक्रिया से जोड़ा गया। एडम स्मिथ के अनुसार श्रम विभाजन और उत्पादकता में वृद्धि आर्थिक प्रगति के प्रमुख आधार हैं। इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषता यह है कि इसने आर्थिक विकास में उत्पादन एवं पूँजी की भूमिका स्पष्ट की, लेकिन इसमें सामाजिक असमानता, मानव कल्याण और पर्यावरणीय प्रभावों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया।

2.2. रिकार्डो का विकास सिद्धांतः डेविड रिकार्डो ने भूमि, श्रम और पूँजी के पारस्परिक संबंध तथा आय–वितरण को विकास से जोड़ा। उनके अनुसार सीमित भूमि और घटते प्रतिफल के कारण दीर्घकाल में आर्थिक विकास की गति प्रभावित हो सकती है। यह सिद्धांत संसाधनों की सीमितता और आय–वितरण को समझने में उपयोगी है, किंतु आधुनिक तकनीकी प्रगति तथा संस्थागत परिवर्तनों की भूमिका इसमें पर्याप्त रूप से नहीं दिखाई देती।

2.3. विकास का मार्क्सवादी सिद्धांतः कार्ल मार्क्स ने विकास को उत्पादन शक्तियों, उत्पादन संबंधों और वर्ग–संघर्ष के संदर्भ में समझाया। उनके अनुसार आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन को भी प्रभावित करता है। इस दृष्टिकोण की विशेषता यह है कि यह विकास के साथ वर्गीय असमानता, श्रम और संसाधनों के स्वामित्व को जोड़ता है। हालांकि, केवल वर्ग–संघर्ष के आधार पर विकास की जटिल प्रक्रिया को पूरी तरह समझना कठिन है।

2.4. विकास का रोस्टोव सिद्धांतः वॉल्ट व्हिटमैन रोस्टोव ने 1960 में आर्थिक विकास का पांच चरणों वाला सिद्धांत प्रस्तुत किया था, जिसके अनुसार हर देश अविकसित अवस्था से विकसित अवस्था तक पहुँचने के लिए पांच क्रमिक चरणों से गुजरता है। यह विवरण निम्नानुसार है:

1. पारंपरिक समाज (Traditional Society) विकास का प्रारंभिक चरण है, जहाँ अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित होती है, तकनीकी ज्ञान बहुत कम होता है और उत्पादन सीमित होता है।
2. विकास की पूर्व–शर्तें (Preconditions for Take-Off) चरण में समाज आधुनिकता की ओर बढ़ना शुरू करता है, कृषि में सुधार होता है, बुनियादी ढांचा विकसित होता है और निवेश व व्यापार की शुरुआत होती है।
3. उत्थान की अवस्था (Take-Off) विकास की सबसे तेज और महत्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें औद्योगीकरण तेजी से बढ़ता है, तकनीकी क्रांति आती है और निवेश की दर राष्ट्रीय आय का 5 से 10 प्रतिशत या उससे अधिक हो जाती है।
4. परिपक्वता की ओर अग्रसर (Drive to Maturity) अवस्था में अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर हो जाती है, आधुनिक तकनीक का विस्तार सभी क्षेत्रों में होता है, और घरेलू स्तर पर उच्च निवेश के साथ विकास की गति स्वतः संचालित होने लगती है।
5. उच्च जन उपभोग का युग (Age of High Mass Consumption) अंतिम चरण है जहाँ अर्थव्यवस्था का ध्यान भारी उद्योगों और उत्पादन से हटकर नागरिकों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं के बड़े पैमाने पर उपभोग पर केंद्रित हो जाता है।

इस सिद्धांत ने विकास को चरणबद्ध प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास किया, परंतु इसकी आलोचना इस आधार पर की गई कि यह सभी देशों के विकास को एक समान मार्ग पर चलने वाला मानता है और ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विविधताओं को पर्याप्त महत्त्व नहीं देता।

2.5. विकास का संरचनात्मक परिवर्तन सिद्धांतः इस दृष्टिकोण के अनुसार विकास के साथ अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन होता है, विशेषकर कृषि से उद्योग और सेवाओं की ओर श्रम एवं संसाधनों का स्थानांतरण। विकासशील देशों में औद्योगीकरण और शहरीकरण को समझने के लिए यह दृष्टिकोण उपयोगी है। लेकिन यदि संरचनात्मक परिवर्तन के साथ रोजगार सृजन न हो, तो बेरोजगारी और असमानता जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

2.6. विकास का निर्भरता सिद्धांतः निर्भरता सिद्धांत के अनुसार विकासशील देशों की आर्थिक समस्याओं को केवल उनके आंतरिक कारणों से नहीं समझा जा सकता। औपनिवेशिक विरासत, अंतरराष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था और विकसित देशों पर आर्थिक निर्भरता भी इनके विकास को प्रभावित करती है। यह सिद्धांत वैश्विक आर्थिक असमानता और विकसित–विकासशील देशों के संबंधों को समझने में महत्त्वपूर्ण है। हालांकि, यह कभी–कभी घरेलू संस्थाओं, नीतियों और निर्णयों की भूमिका को अपेक्षाकृत कम महत्त्व देता है।

सिद्धांत	विकास के प्रमुख आधार	प्रमुख सीमा
शास्त्रीय सिद्धांत	श्रम, पूँजी, उत्पादन	सामाजिक पक्ष सीमित
मार्क्सवादी सिद्धांत	वर्ग एवं उत्पादन संबंध	अन्य कारकों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान
रोस्टोव मॉडल	विकास के चरण	सभी देशों के लिए समान मार्ग की धारणा
संरचनात्मक सिद्धांत	कृषि से उद्योग/सेवा की ओर परिवर्तन	रोजगार एवं असमानता की समस्या
निर्भरता सिद्धांत	वैश्विक आर्थिक संबंध	आंतरिक कारकों को कम महत्त्व
नवशास्त्रीय सिद्धांत	बाजार एवं तकनीकी प्रगति	सामाजिक असमानता पर सीमित ध्यान
अंतर्जात सिद्धांत	ज्ञान, मानव पूँजी एवं नवाचार	संस्थागत एवं सामाजिक विविधता की जटिलता
मानव विकास	स्वास्थ्य, शिक्षा एवं क्षमताएँ	मापन अपेक्षाकृत व्यापक एवं जटिल
सतत विकास	अर्थव्यवस्था, समाज एवं पर्यावरण का संतुलन	दीर्घकालीन नीतिगत समन्वय कठिन

2.7. विकास का नवशास्त्रीय सिद्धांतः इस दृष्टिकोण में बाजार, बचत, निवेश, पूँजी तथा तकनीकी प्रगति को आर्थिक विकास का प्रमुख आधार माना गया। सोलो के विकास मॉडल में पूँजी संचय और तकनीकी प्रगति को विशेष महत्त्व दिया गया। यह सिद्धांत तकनीकी प्रगति और उत्पादकता की भूमिका को स्पष्ट करता है, लेकिन केवल बाजार–आधारित दृष्टिकोण से गरीबी, सामाजिक बहिष्करण और असमानता की सभी समस्याओं का समाधान नहीं होता।

2.8. विकास का अंतर्जात सिद्धांतः इस सिद्धांत में तकनीकी ज्ञान, मानव पूँजी, अनुसंधान एवं विकास तथा नवाचार को आर्थिक विकास के भीतर उत्पन्न होने वाले कारकों के रूप में देखा जाता है। आज के ज्ञान–आधारित अर्थतंत्र में यह सिद्धांत विशेष रूप से प्रासंगिक है। शिक्षा, कौशल और नवाचार में निवेश दीर्घकालीन विकास को गति दे सकता है।

2.9. विकास का मानवीय सिद्धांतः मानव विकास दृष्टिकोण में विकास का केंद्र मनुष्य है। केवल प्रति व्यक्ति आय बढ़ना पर्याप्त नहीं माना जाता, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन–स्तर, अवसर और मानवीय क्षमताओं के विस्तार को भी

विकास का आधार माना जाता है। यह दृष्टिकोण विकास की अवधारणा को आर्थिक वृद्धि से आगे ले जाता है और सामाजिक कल्याण तथा जीवन की गुणवत्ता को महत्त्व देता है।

2.10. विकास का धारणीय सिद्धांतः सतत विकास का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं को प्रभावित न करना है। इसमें आर्थिक विकास, सामाजिक समावेशन और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन पर बल दिया जाता है। जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण और पर्यावरणीय संकट के वर्तमान दौर में यह दृष्टिकोण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

विकास के उपर्युक्त विभिन्न सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि विकास की अवधारणा समय के साथ व्यापक हुई है। प्रारम्भ में विकास का मुख्य आधार आर्थिक वृद्धि और पूँजी संचय था, लेकिन बाद में रोजगार, समानता, मानव क्षमता, सामाजिक न्याय, संस्थागत गुणवत्ता और पर्यावरणीय स्थिरता को भी विकास का अभिन्न अंग माना गया।

निष्कर्ष एवं सुझाव : उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विकास के सिद्धांत मानव जीवन, समाज और जीव विज्ञान में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों और प्रगति को समझने के महत्वपूर्ण वैचारिक ढांचे हैं। विकास केवल बाहरी कारकों से नहीं, बल्कि मानव पूंजी, शिक्षा, और अनुसंधान व विकास में निवेश से आता है। अमर्त्य सेन और महबूब–उल–हक के अनुसार, आर्थिक विकास का अंतिम लक्ष्य केवल जीडीपी बढ़ाना नहीं, बल्कि मानव कल्याण, स्वास्थ्य, शिक्षा और स्वतंत्रता का विस्तार करना है। इस विश्लेषणात्मक अध्ययन का सार यह है कि आर्थिक विकास कोई एकतरफा प्रक्रिया नहीं है। शुरुआत में जहां पूंजी संचय और औद्योगीकरण पर जोर दिया गया, वहीं आधुनिक समय में तकनीकी नवाचार, संस्थागत सुधार, मानव विकास और सतत विकास को आर्थिक प्रगति का असली आधार माना जाता है। इस तरह विकास को केवल आर्थिक वृद्धि के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। आधुनिक संदर्भ में विकास एक ऐसी समग्र प्रक्रिया है जिसमें आर्थिक समृद्धि के साथ मानव कल्याण, सामाजिक समानता, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीकी क्षमता, सामाजिक न्याय तथा पर्यावरणीय संतुलन सम्मिलित हैं। इसलिए किसी भी क्षेत्र या समाज के विकास का विश्लेषण करते समय विभिन्न विकास सिद्धांतों को परस्पर पूरक दृष्टिकोण के रूप में देखना अधिक उपयुक्त है।

स्रोत एवं संदर्भ :

1. गिडेंस, एंथोनी (2001). सोशियोलॉजी, पांचवा एडिशन, यू0 के0 पालिटी प्रेस, 2001।
2. मिर्डल, गुन्नार (1970). चैलेंज ऑफ वर्ल्ड पॉवर्टी, एलेनलेनः पेंगुइन प्रेस, 1970।
3. सिंह, शिवबहाल (1985). रेलीवेंस आफ सोशल फैक्ट र्सइन एंटरप्रेन्योर ग्रोथ, जर्नल ऑफ सोशियोलॉजिकल स्टडीज, वॉल्यूम 4 जनवरी, 1985।
4. सिंह, शिवबहाल (1985). एंटरप्रेन्योरशिप एंडसोशलचेंज, जयपुर, रावत पब्लिकेशन, 1985।
5. बरान, पॉल (1973). द पॉलिटिकल इकॉनमी ऑफ ग्रोथ, 1973।
6. हिर्शमैन, ए. ओ. (1958). द स्ट्रेटेजी ऑफ इकोनॉमिक डेवलपमेंट। येल यूनिवर्सिटी प्रेस,1958।
7. लुईस, डब्ल्यू. ए. (1954). इकोनॉमिक डेवलपमेंट विद अनलिमिटेड सप्लाईज ऑफ लेबर। द मैनचेस्टर स्कूल, 22(2), 139–191. https://doi.org/10.1111/j.1467-9957.1954.tb00021.x
8. मिर्डल, जी. (1957). इकोनॉमिक थ्योरी एंड अंडर–डेवलप्ड रीजन्स। जेराल्ड डकवर्थ एंड कंपनी, 1957।
9. नर्क्से, आर. (1953). प्रॉब्लम्स ऑफ कैपिटल फॉर्मेशन इन अंडरडेवलप्ड कंट्रीज। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. रोस्टो, डब्ल्यू. डब्ल्यू. (1960). द स्टेजस ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथः ए नॉन–कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो। दूसरा संस्करण, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

=====

आलेख उद्धरित करें :	गुप्ता, डॉ. आलोक (2026)। विकास के सिद्धांत का विश्लेषणात्मक अध्ययन। बुंदेलखंड जर्नल ऑफ अकादमिक रिसर्च (बीजेएआर), वॉल्यूम–2, अंक–3, जुलाई–सितंबर, 2026, पृष्ठ 31–34। https://doi.org/10.5281/zenodo.23005666